सिरोही जिले में जैन धर्म

□ डॉ० सोहनलाल पटनी,
[स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय, सिरोही (राजस्थान)]

सं० १४८५ में सिरोही की स्थापना के पूर्व यह क्षेत्र अर्बुद मण्डल के नाम से विख्यात था। अर्बुद मण्डल का महत्त्व अर्बुद पुराण से ज्ञात होता है। जैन धर्म की दृष्टि से इस प्रदेश का इतिहास भगवान पार्श्वनाथ के गणधर केशी से प्रारम्भ होता है। इन केशी गणधर ने सिरोही जिले के प्राचीनतम तीर्थ ब्राह्मणवाटक (बामनवाड़जी) में भगवान महावीर के जीवित स्वामी बिम्ब की प्रतिष्ठा की थी। जैन जगत् में आज भी यह उक्ति प्रसिद्ध है कि नाणा (पाली जिला), दियाणा (सिरोही जिला) एवं नांदिया के मन्दिर जीवित स्वामी मन्दिर हैं।

नाणा दियाणा नांदिया
जीवित स्वामी वांदिया

जीवित स्वामी या जीवंत स्वामी तीर्थ उस तीर्थ को कहते हैं जिसकी स्थापना भगवान् महावीर के जीवन-काल में ही हो चुकी थी। भगवान् महावीर के बड़े भाई नंदिवर्द्धन ने नांदिया गाँव में भगवान् के भव्य मन्दिर की स्थापना की। नांदिया चैत्य की भगवान् महावीर की यह मूर्ति सपरिवार अष्ट प्रातिहार्य वाली है, जिसकी समता की मूर्ति अन्यत्र मिलना कठिन है। ऐसी भी जनश्रुति है कि भगवान के कानों में कीलें ठोकने का उपसर्ग इसी ब्राह्मणवाटक स्थान पर हुआ था एवं यही प्रदेश अनार्य प्रदेश था। चण्डकौशिक का उपसर्ग भी नांदिया के मन्दिर के पास ही हुआ था जिसका उत्कीर्णन एक पहाड़ी शिला पर आज भी देखा जा सकता है। मुण्डस्थल महातीर्थ (वर्तमान मूंगथला) के सं० १२१६ के स्तम्भ लेख के अनुसार भगवान् महावीर छद्मस्थावस्था में अर्बुद भूमि में विचरे थे। इसकी पुष्टि भीनमाल के महावीर मन्दिर के वीर सं० १३३४ के लेख से भी होती है कि वीर प्रभु यहाँ विचरे थे।[1]

मुण्डस्थल के इस लेख के अनुसार श्री वीर के सैंतीसवें वर्ष में पूर्णराज (?) नामक राजा ने श्री वीर भगवान् की सुन्दर मूर्तियाँ बनवाई थीं एवं उनकी प्रतिष्ठा श्री पार्श्वनाथ भगवान् के संतानीय श्री केशी गणधर ने की थी। १२वीं सदी में श्री महेन्द्र सूरि ने अपने अष्टोत्तरी तीर्थमाला में इस तथ्य की पुष्टि की है। श्री वीर प्रभु के आठवें पट्टधर श्री आर्य महागिरि सूरि और आर्य सुहस्ति सूरि के समय में आज से लगभग २२०० वर्ष पहले सम्राट अशोक के पौत्र जैन धर्म मण्डन महाराज सम्प्रति ने सिद्धगिरि, रेवतगिरि, शंखेश्वर, नंदिया (नांदिया) एवं ब्राह्मणवाटक (नामनवाडजी) तीर्थ की यात्रा की थी। नांदिया एवं बामनवाडजी सिरोही जिले में ही हैं। महाराज सम्प्रति ने इस जिले में कई जैन मन्दिरों का निर्माण करवाया था, ऐसी जनश्रुति है।

---

१. आर्क्योलोजिकल रिपोर्ट सन् १९०७-८ ; श्री श्वेताम्बर कान्फरेन्स हेराल्ड, जुलाई-अक्टूबर १९१५ एवं तपागच्छीय पट्टावली पृ० ३२८ से ३७३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री वीर प्रभु के बारहवें पट्टधर श्री आर्य सिंहसूरि के समय अर्थात् आज से लगभग १९६७ वर्ष पहले श्री नागार्जुनसूरि, श्री स्कन्दिलसूरि एवं श्री पादलिप्तसूरि अपने पैरों में औषधि का लेप कर आकाश मार्ग से उड़कर सिद्धाचल, गिरनार, सम्मेतगिरि, नन्दिया चैत्र (नांदिया) एवं ब्राह्मणवाटक महातीर्थ की यात्रा करते थे।

श्री वीर प्रभु के उन्तीसवें पटधर श्री जयानन्द सूरिजी के समय में वि० सं० ८२१ के आसपास चन्द्रावती के मन्त्री सामन्त ने सम्प्रति के बनाये मन्दिरों में से ब्रह्माण (वरमाण-सिरोही), नंदिया (नांदिया-सिरोही), ब्राह्मणवाटक (बामनवाड़-सिरोही) मुहरिपास आदि मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया था।

भगवान् महावीर के पैंतीसवें पट्टधर श्री उद्योतनसूरिजी ने मगधदेश से आबू यात्रा के लिए विहार किया था एवं बंभनवाड़, नंदिया तथा दहियाणक (दियाण-सिरोही) आदि तीर्थों की यात्रा की थी।[1]

विक्रमी संवत् १२८२ के आसपास सोमप्रभसूरि के पट्टधर जगच्चन्द्रसूरि तथा उनके सहचारी देवप्रभसूरि ने भी इन तीर्थों की यात्रा की थी।

तत्पश्चात् वि०संवत् १५०० के आसपास लिखी पं० मेघ की तीर्थमाला से लेकर आज तक तीर्थमालाओं में सिरोही जिले के जीरावाल, ब्राह्मण (वरमाण), ब्राह्मनवाटक, नंदिया, दहियाणक (दियाण), कोरटा (कोरंटक), मीरपुर एवं आबू के तीर्थों के उल्लेख हैं।

मौर्ययुग से ही अर्बुद मण्डल जैन धर्म का प्रमुख स्थान रहा है। सम्प्रति मौर्य के युग में तो कई जैन मन्दिर इस क्षेत्र में बने ही थे। गुप्तकाल में वसन्तगढ़ धातु कला एवं मूर्तिकला का केन्द्र रहा। आज भी यहाँ ताम्बे की खानों के लिए ड्रिलिंग हो रहा है। यहाँ जैनों की प्रचुरमात्रा में बस्ती थी एवं यहाँ की बनी धातु प्रतिमाएँ भारत के मूर्ति-कला के क्षेत्र में नया कीर्तिमान स्थापित करती थीं। ऐसी ही गुप्तकाल की दो कलात्मक आदमकद धातु प्रतिमाएँ पश्चिमी रेलपथ के सिरोही रोड स्टेशन से १ कि० मी० दूर पिण्डवाड़ा के मन्दिर में देखी जा सकती हैं। वसन्तगढ़ की ही ढली हुई चिन्तामणि पार्श्वनाथ की दो दुर्लभ राजपूतकालीन धातु-प्रतिमाएँ भी इसी मन्दिर में सुरक्षित हैं। यहाँ के प्रसिद्ध मूर्तिकार शिवनाग का नाम कौन नहीं जानता? मूर्तिकला के क्षेत्र में आज भी उसका डंका बज रहा है।

बीच के युगों में इस क्षेत्र पर ब्राह्मणधर्म का जोर रहा। तत्पश्चात् ७ वीं सदी में आचार्य हरिभद्रसूरि ने इस प्रदेश के पुरातन मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाकर उनकी प्रतिष्ठा की। इन मन्दिरों में जीरावल का मन्दिर मुख्य है। हरिभद्र युग के पश्चात् इस क्षेत्र में कलात्मक मन्दिरों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। कलात्मक वैभव की प्रथम कृति थी कला मन्दिर मीरपुर जो पहाड़ी की तलहटी में विशाल पीठिका पर हाथियों की करधनी पर स्थित है। इसकी तक्षण कला देलवाड़ा एवं राणकपुर के मन्दिरों की पूर्ववर्ती है। परमारों की उजड़ी राजधानी चन्द्रावती के कलात्मक वैभव के नमूने कर्नल टाड की 'ट्रेवल्स इन वेस्टर्न इण्डिया' (पश्चिमी भारत की यात्रा) नामक पुस्तक में देखने को मिल सकते हैं। इस नगरी का वैभव ८वीं से १२वीं सदी तक रहा। इसके मन्दिरों के तोरण, छारों एवं सिंहद्वारों के कलात्मक नमूने यदि आप देखना चाहें तो प्रसिद्ध तीर्थ ब्राह्मणवाड़ा (बामनवाड़जी) के पास झाड़ोली के मन्दिर के सिंहद्वार पर देख सकते हैं। ऐसी जनश्रुति है कि इस चन्द्रावती में ९९९ झालरें बजती थी। इतने मन्दिर चन्द्रावती में रहे हों या न रहे हों पर यह बात इतिहास-सिद्ध है कि यह नगरी बड़ी समृद्ध थी। यहीं के निवासी प्राग्वाट ज्ञातीय गांगा पुत्र धरणिंग की पुत्री अनुपमा देवी ने अपने पुत्रहीन पिता की सम्पत्ति से देलवाड़ा के जगत् प्रसिद्ध लूणवसहि (नेमिनाथ-मन्दिर) का निर्माण करवाया जिसका श्रेय धोलक के मन्त्री वस्तुपाल एवं तेजपाल को मिला। इस मन्दिर का शिल्पी सोभनदेव चन्द्रावती का रहने वाला था। गुजरात के राजा परममाहेश्वर भीमदेव सोलंकी के मन्त्री एवं सिंह-सेनापति विमलशाह ने भी इस लूणवसहि मन्दिर के पूर्व विमलवसहि (आदिनाथ) नाम के एक विश्व-विश्रुत कलात्मक मन्दिर का निर्माण करवाया था। चन्द्रावती के उजड़ने के बाद वसन्तगढ़ एवं आबू पर जैनों ने पाँव

१. कुवलयमाला प्रशस्ति। कुवलयमाला पर निबन्ध–मुनि जिनविजयजी.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जमाने का प्रयत्न किया पर उन्हें सफलता नहीं मिली। निरन्तर आक्रमणों से ये दोनों ही स्थान उजड़ गये। गुजरात के परमार्हत महाराज चौलुक्य कुमारपाल ने आबू, जीरावल एवं आसपास के क्षेत्र के मन्दिरों के जीर्णोद्धार के लिए महत्प्रयत्न किये। प्रसिद्ध जैनाचार्य जिनदत्तसूरि, सोमचन्द्रसूरि, लक्ष्मीसागर सूरि, हरिविजयसूरि एवं मेघविजयोपाध्याय का सम्बन्ध इस मण्डल से बराबर रहा। संस्कृत के प्रसिद्ध कवि माघ के पूर्वजों का सम्बन्ध वसन्तगढ़ के राणाओं से रहा। वस्तुपाल ने इस प्रदेश के चन्द्रावती एवं देलवाडा में अपने वसन्तविलास ग्रन्थ को पूरा किया जिस पर सोमेश्वर ने उन्हें श्रेष्ठ कवि की उपाधि दी।[1] सोमेश्वर ने भी अपने चन्द्रावती निवास के समय कीर्तिकौमुदी की रचना की। तपागच्छ के हेमविजयगणि के 'विजय प्रशस्ति महाकाव्य' की दस हजार श्लोक प्रमाण टीका की समाप्ति गुणरत्न विजयजी ने सं० १६८८ में सिरोही में की।

राणकपुर के त्रैलोक्य दीपक मन्दिर का निर्माता धरणशाह सिरोही जिले के नांदिया गाँव का रहने वाला था। सम्राट अकबर-प्रतिबोधक हीरविजयसूरि ने सिरोही के उत्तुंग शिखर चौमुखा मन्दिर की प्रतिष्ठा की थी एवं यहीं उन्हें आचार्य पदवी प्रदान की गयी थी।

वि० सं० १५३३ में सिरोही के एक गाँव अठवाड़ा (शिवगंज तहसील) में स्थानकवासी परम्परा के प्रवर्तक लोकाशाह ने मूर्तिपूजा का विरोध किया एवं दयाधर्म की उद्घोषणा की। इनके विषय में एक पुराना दोहा प्रसिद्ध है—

लोकाशाहइ जलमिया सिरोही धरणा।
संता शूरा वरणिया भौसागर तरणा॥

इन लोकाशाह ने एवं इनके शिष्य लखमसी, रूपजी तथा जीवनी ऋषि ने सर्वप्रथम पोसलिया (सिरोही) एवं सिरोही में लोकागच्छ उपाश्रयों की स्थापना की। इस प्रकार स्थानकवासी परम्परा का प्रारम्भ सिरोही से हुआ।

१७वीं सदी से तो सिरोही जैनधर्म का गढ़ रहा है। यहाँ के दीवान पद पर बहुत से जैन प्रतिष्ठित हुए एवं सिरोही के महाराव सुरताण ने हीरविजयसूरि के उपदेश से अमारि प्रवर्तन का आदेश दिया था। सिरोही के महाराव शिवसिंह की बामनवाड़ मण्डन महावीर स्वामी पर अटूट श्रद्धा थी एवं उन्होंने मन्दिर के लिए वीरवाड़ा ग्राम का दान दिया था। उन महाराव की हाथी से उतरी नमस्कार मुद्रा में पूजार्पण मुद्रा प्रतिमा बामनवाड़ी में आज भी मौजूद है।

श्वेताम्बर परम्परा में सिरोही को अर्द्धशत्रुंजय की महिमा से मण्डित किया गया है एवं यहाँ के जैनों ने अहमदाबाद, सूरत एवं बड़ौदा में बसकर बहुत प्रतिष्ठा प्राप्त की है।

धार्मिक सहिष्णुता भी इस प्रदेश में बहुत रही है। देलवाड़ा के नेमिनाथ मन्दिर के सं० १२८७ के लेख से यह ज्ञात होता है कि इस मन्दिर के संरक्षण का उत्तरदायित्व राजपूतों एवं ब्राह्मणों तक ने अपने ऊपर लिया था। परवर्तीकाल में भी जैनों को राज्याश्रय यहाँ मिला। वि० सं० १९६४ की वैशाख सुदि प्रतिपदा को वाटेरा ग्राम में त्रिविक्रम विष्णु मन्दिर की प्रतिष्ठा जैनाचार्य विजयमहेन्द्रसूरिजी ने की थी। यहाँ के जैन गुजरात एवं दक्षिण भारत में व्यापार-व्यवसाय करते हैं एवं अपनी संस्कृति की रक्षा में लगे हुए हैं।

□

१. सोमेश्वर की आबू के लूणवसहि मन्दिर की प्रशस्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org